मक्सिम गोर्की

दादा आर्खिप और ल्योंका

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : 30 रुपये
पहला भारतीय संस्करण 2005

प्रकाशक
अनुराग ट्रस्ट
डी - 68, निरालानगर
लखनऊ - 226020

लेजर टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन
मुद्रक : वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ

दादा आर्खिप और ल्योंका

नाव का इंतज़ार करते हुए वे दोनों एकदम खड़ी चढ़ाई वाले तट के साये में लेट गये और कुबान की तेज, गन्दी-मटमैली लहरों को देर तक देखते रहे जो उनके पैरों को धोती हुई गुजर रहीं थीं। ल्योंका ने इस बीच झपकी मार ली, लेकिन छाती में

लगातार मद्धम और दबाव-सा देते हुए दर्द के अहसास के चलते दादा आर्खिप सो नहीं सका। धरती की गहरी-भूरी पृष्ठभूमि में उनकी जर्जर, झुकी हुई आकृतियाँ दो दयनीय ढेरियों के समान प्रतीत हो रही थीं, एक-थोड़ी बड़ी, और दूसरी-थोड़ी छोटी; उनके थके-माँदे, धूप में झुलसे और धूल-सने चेहरों का रंग भी हू-ब-हू वही था जो उनके भूरापन लिए हुए चिथड़ों का।

दादा आर्खिप का लम्बा, हड़ियल शरीर बालू की इस तंग पट्टी पर पसरा हुआ था जो खड़ी चढ़ाई वाले तट और नदी के बीच, किनारे-किनारे एक पीले रिबन की तरह फैली थी। झपकी मारता ल्योंका बूढ़े के बाजू में गुड़ी-मुड़ी पड़ा हुआ था। ल्योंका छोटा और कमज़ोर था। अपने चीथड़ों में लिपटा ल्योंका और उसके दादा को देखकर लग रहा था जैसे एक गाँठदार टहनी उस पुराने सूखे पेड़ से टूटकर अलग हो गई हो जिसे लहरें अपने साथ बहाकर लाई हों और बालू पर डाल गई हों।

बूढ़े ने खुद को एक कुहनी के सहारे ऊपर उठाया और दूसरे किनारे की ओर देखा। उस पार धूप खिली हुई थी, यहाँ-वहाँ कुछ झाड़ियाँ दीख रहीं थी और उन झाड़ियों के बीच से बाहर की ओर निकला हुआ नाव का काला डेक दीख रहा था।

पूरा परिदृश्य एकदम निर्जन, उदास था। नदी से शुरू होकर सड़क की एक धूसर पट्टी स्तेपी की गहराइयों में चली गई थी; वह कुछ कठोर ढंग से सीधी, शुष्क और अवसादपूर्ण लग रही थी।

उसकी आँखें किसी भी बूढ़े की उदास, जलती हुई आँखों जैसी थीं, उनके पपोटे लाल और सूजे हुए थे और वे व्यग्रतापूर्वक झपक रहीं थीं। झुर्रियों के जाल से भरे उसके चेहरे पर एक तरह की श्रांत विपत्ति का स्थायी भाव अंकित था। हर कुछ समय बाद वह नियंत्रित ढंग से खाँसता था और अपने पोते की ओर देखते हुए मुँह को हाथ से ढक लेता था। खाँसी एकदम फटी हुई और घुटी हुई थी। खाँसते समय बूढ़ा जमीन से उठ जा रहा था और आँखों से बहते आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदों को पोंछने लगता था।

खाँसी और रेत पर चढ़ आती लहरों की मद्धम फुसफुसाहट-पूरी स्तेपी में सिर्फ यही आवाज़ें थीं। स्तेपी नदी के उस पार भी फैली हुई थी, विस्तृत, भूरी, धूप में

झुलसी हुई, और उससे काफी दूरी पर, बूढ़े की दृष्टि-सीमा से लगभग बाहर, गेहूँ का एक सुनहला सागर अपनी पूरी समृद्धि के साथ झूम-लहरा रहा था और अन्धा कर देने वाली चमक लिए हुए आकाश सीधे इसी में गिर पड़ा था। इस पृष्ठभूमि पर तीन छरहरे, उदासीन पॉपलर के पेड़ों की आकृतियाँ दीख रहीं थीं, किसी छायाचित्र की तरह। झिलमिलाता आकाश और उससे ढंका गेहूँ जब उठता और गिरता था तो लगता था जैसे पॉपलर के पेड़ कभी बड़े हो जा रहे हों और कभी छोटे। और फिर

सबकुछ अचानक स्तेपी की गर्मी के धुँधलके के चमकते-रुपहले पर्दे के पीछे छिप जाता था...

यह प्रवाहमय, चमकदार, भ्राँतिजनक पर्दा कभी-कभी दूर से एकदम नदी के किनारे तक बहता हुआ आता था... और फिर यह एक और नदी की तरह लगने लगता था, अचानक आकाश से प्रवाहित होता हुआ, उतना ही शुद्ध और शान्त जैसा कि आकाश खुद था।

ऐसे समय में दादा आर्खिप, जो ऐसी परिघटनाओं का आदी नहीं था, अपनी आँखें मलने लगता और उदास होकर सोचता था कि गर्मी और उसमें तपती स्तेपी उससे उसकी आँखों की रोशनी भी छीने ले रही हैं, जैसे कि वे उसकी टाँगों की आखिरी बची-खुची ताकत भी छीन चुकी हैं। आज वह अपनी हालत उससे भी बदतर महसूस कर रहा था जैसी कि आम तौर पर पिछले कुछ महीनों से बनी हुई थी। वह महसूस कर रहा था कि वह जल्दी ही मर जायेगा और, हालाँकि इसके प्रति उसका अपना रुख पूरी तरह से उदासीनता का था और वह इसे एक ऐसी अपरिहार्य आवश्यकता मानता था जिसके बारे में सोचना बेकार था, लेकिन वह यहाँ से काफी दूर, अपने गाँव में मरना पसन्द करता, और अपने पोते के बारे में बहुत चिन्तित रहता था। ल्योंका का क्या होगा?

वह खुद दिन में कई बार इस सवाल से जूझता था और हमेशा ही उसके भीतर जैसे कोई चीज़ सिकुड़ जाती थी और ठण्डी पड़ जाती थी और वह इतना दुःखी-बेचैन हो उठता था कि बिना और देर किये, रूस, अपने घर, पहुँच जाना चाहता था...

लेकिन रूस अभी काफ़ी दूर था। अब, जो भी हो, रूस पहुँचना उसे बदा नहीं था, उसे रास्ते में ही मरना था। यहाँ, कुबान में, भीख देने के मामले में लोग उदार थे; कुल मिलाकर वे समृद्ध थे, हालांकि कठोर थे और उनमें एक निर्मम किस्म की विनोदशीलता थी। भिखारियों के लिए उनमें कोई प्यार नहीं था क्योंकि वे खुद धनी थे।

अपनी कीचड़-सनी आँखों से पोते को देखते हुए बूढ़े ने उसके सिर पर अपने रूखे हाथों से थपकी दी।

ल्योंका हिला और अपनी नीली आँखें उठाकर उसने उसे देखा। उसकी आँखें काफ़ी बड़ी और भावव्यंजक थीं, उनमें एक ऐसा विचारमग्नता का भाव था जो बालसुलभ नहीं था और पतले, रक्तहीन होठों, तीखी नाक और चोट के निशान वाले उसके दुबले-पतले चेहरे पर वे और अधिक बड़ी लग रही थीं।

"आ रही है क्या?" उसने पूछा और आँखों के ऊपर हाथ की छाया करके नदी

की ओर देखने लगा जो धूप में चमक रही थी।

"नहीं, अभी नहीं आ रही है। अभी वहीं खड़ी है। उसे इधर से ले ही क्या जाना है? कोई उसे बुला तो रहा नहीं है, इसलिए वह वहीं खड़ी है...", आर्खिप ने बच्चे का सिर थपथपाते हुए धीरे-धीरे कहा, "क्या तुम सो गये थे?"

ल्योंका ने अनिश्चिता के साथ सिर हिलाया और बालू पर पसर गया। दोनों थोड़ी देर चुप रहे।

"यदि मैं तैर पाता तो नहाता," ल्योंका ने नदी को एकटक देखते हुए घोषणा की। "नदी इतनी तेज़ है! हमलोगों के वहाँ ऐसी नदियाँ नहीं हैं। इसे जल्दी किस बात

की पड़ी है? यूँ भागी जा रही है जैसे देर हो जाने का डर हो..."

और ल्योंका ने नापसन्दगी के साथ अपना मुँह पानी से दूसरी ओर फेर लिया।

"एक उपाय है मेरे पास," थोड़ी देर सोचने के बाद दादा ने कहा! "हम दोनों अपने कमरबन्द खोलकर उन्हें आपस में बाँध दें, फिर मैं उसका एक सिरा तुम्हारे टखने से बाँध दूँगा और तुम तैर लेना..."

"अच्छी बात है," ल्योंका संशय के साथ भुनभुनाया। "फिर क्या होगा, यह भी सोचा है! तुम क्या सोचते हो, यह तुम्हें भी नहीं खींच ले जायेगी? हम दोनों डूब जायेंगे।"

"तुम ठीक कह रहे हो! यही होगा। उहँ, लेकिन यह एकदम दौड़ लगा रही है... ज़रा सोचो, बसन्त में जब इसमें बाढ़ आती होगी तो कैसा दृश्य होता होगा!...और फिर वे दूर-दूर तक फैले जल-बाँगरों (जल-सिंचित घास के मैदान) की कटाई कैसे पूरी करते होंगे! उनका तो कोई अन्त ही नहीं होता होगा!"

ल्योंका बातचीत के मूड में नहीं था। उसने अपने दादा की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया और सूखी मिट्टी का एक ढेला उठाकर उँगलियों से मसलकर उसे चूरा बना दिया। उसका चेहरा गम्भीर और एकाग्रचित था।

उसके दादा ने उसकी तरफ देखा और अपनी आँखों को सिकोड़े हुए खुद भी कुछ सोचता रहा।

"अब देखो, इस मिट्टी को..." ल्योंका ने अपने हाथों से धूल झाड़ते हुए, मद्धम, एकरस आवाज में बोलना शुरू किया। "...मैंने इसे लिया, और मसल दिया और यह धूल बन गई...महज कुछ बेहद छोटे-छोटे कण इतने छोटे कि मुश्किल से ही नज़र आयें..."

"ठीक है, और तब, उसका क्या?" आर्खिप ने पूछा और खाँसने लगा। अपनी आँखों में झिलमिलाते आँसुओं के बीच से अपने पोते की बड़ी-बड़ी, सूखी, चमकती आँखों में झाँकते हुए उसने पूछा, "इससे तुम कहना क्या चाहते हो?"

"कुछ ख़ास नहीं, " ल्योंका ने सिर हिलाया। "मान लो, यानी मेरा मतलब यह है कि यह जो सब कुछ यहाँ चारों तरफ है..." उसने अपना हाथ नदी की दिशा में

लहराया। "और यह सब कुछ जो बना हुआ है...हम और तुम इतने सारे शहरों से गुज़रे हैं! कित्ते सारे! और सभी जगह इतने अधिक लोगों की भीड़!"

और, अपने विचारों को सुस्थिर कर पाने में असमर्थ ल्योंका अपने चारों ओर देखता हुआ एक ध्यानस्थ मौन में डूब गया।

बूढ़ा भी थोड़ी देर चुप रहा, फिर अपने पोते के पास खिसककर बैठ गया और नरमी के साथ बोला :

"कितना समझदार लड़का है! जो तुम कह रहे हो, वह सही है–यह सब कुछ धूल है...शहर, और लोग, और तुम, और मैं–कुछ नहीं महज धूल। आह, ल्योंका, ल्योंका! यदि तुम थोड़ा पढ़ना-लिखना सीख पाते!...तुम बहुत आगे जाओगे। लेकिन यदि ऐसे ही चलता रहा तो तुम्हारा क्या होगा?"

दादा ने अपने पोते का सिर पास खींचकर उसे चूम लिया।

"रुको ज़रा..." दादा की गाँठदार काँपती उँगलियों से अपने सन जैसे बालों को छुड़ाते हुए, थोड़ी और सजीवता के साथ ल्योंका ने विस्मय प्रकट किया। "क्या कहा तुमने? धूल? शहर और यह सब कुछ?"

"ईश्वर ने इसी तरह से चीज़े बनाई हैं, मेरे लाडले! सब कुछ धरती का है, और यह धरती खुद ही धूल है। और इस धरती पर जो कुछ भी है, उसे मरना है...तो ऐसी हैं चीज़ें! और इसीलिए इंसान को अपनी रोटी अपने माथे के पसीने और विनम्रता के साथ हासिल करनी चाहिए। मैं भी जल्दी ही मर जाऊँगा।" दादा ने अचानक विषय बदल दिया और फिर करुण स्वर में कहा, "तब तुम कहाँ जाओगे, जब मैं नहीं रहूँगा?"

ल्योंका अपने दादा से अक्सर ही यह सवाल सुनता रहता था। मृत्यु के बारे में बातें करने से वह ऊब चुका था। उसने बिना कोई उत्तर दिये मुँह दूसरी ओर कर लिया, घास का एक पत्ता तोड़ा और उसे मुँह में डालकर धीरे-धीरे चबाने लगा।

लेकिन उसके दादा ने इस विषय पर चर्चा बन्द नहीं की।

"तुम जवाब क्यों नहीं देते? मैं कह रहा हूँ, बोलो तुम क्या करोगे, जब मैं चला जाऊँगा?" उसने लड़के की ओर झुकते हुए धीमे स्वर में पूछा और फिर खाँसने

लगा।

"मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ..." ल्योंका ने अपनी आँखों के कोर से दादा को देखते हुए, अन्यमनस्क ढंग से, और थोड़ी झुँझलाहट के साथ कहा।

वह इस मसले पर बातचीत इसलिए भी नहीं पसन्द करता था कि इसका अन्त प्राय: झगड़े में हुआ करता था। दादा अपनी मौत की निकटता का विस्तार से वर्णन करता था। शुरू में ल्योंका ने ध्यान से सुना, अपनी स्थितियों में होने वाले भयोत्पादक परिवर्तनों से आतंकित हुआ और रोने भी लगा, लेकिन उसके बाद वह सुनते-सुनते थक गया—उसका ध्यान इधर-उधर भटक जाता था और वह अपनी ही कोई बात सोचने लगता था और उसका दादा, जब इस बात को ग़ौर करता था, तो गुस्सा हो जाता था और शिकायत करने लगता था कि ल्योंका उसे प्यार नहीं करता, उसकी देखरेख की कद्र नहीं करता और फिर इसका अन्त इस शिकवे के साथ होता था कि ल्योंका उससे, अपने दादा से, जितनी जल्दी हो सके, छुटकारा पाना चाहता है।

"क्या मतलब—तुम मुझे बता चुके हो? तुम एक मूर्ख नन्हें बच्चे हो, ज़िन्दगी में अपना रास्ता तलाशने लायक नहीं हुए हो। कितने बरस के हुए तुम? ग्यारहवाँ चल रहा है, इससे ज्यादा नहीं। और उसपर से, मरियल हो तुम, कठिन काम के लायक़ भी नहीं हो। कहाँ जाओगे तुम? तुम क्या सोचते हो कि तुम्हें मदद करने वाले रहमदिल लोग मिल जायेंगे? यदि तुम्हारे पास पैसे हों तो उसे जल्दी से जल्दी खर्च कर डालने में मदद करने वाले मिल जायेंगे—यह तय है। लेकिन भीख माँगना बेहद कठिन है—यहाँ तक कि मेरे जैसे बूढ़े के लिए भी। हर आदमी के आगे सिर झुकाओ, हर आदमी से गिड़गिड़ाओ। और वे तुम्हें धिक्कारेंगे, कभी-कभार पीट भी देंगे, तुम्हें रास्ता नापने को कहेंगे...क्या तुम सोचते हो कि कोई भिखारी को वास्तविक इंसान मानता है? कोई नहीं मानता। दस बरस हो गये जबसे मैं सड़क पर हूँ। मैं जानता हूँ। वे रोटी के एक टुकड़े को हज़ार रूबल का समझते हैं। एक आदमी तुम्हें रोटी का एक टुकड़ा देगा और तुम देखना, किस तरह वह सोचता है कि उसके ऐसा करते ही स्वर्ग के दरवाजे झूलते हुए उसके लिए खुलने लगे हैं। तुम क्या सोचते

हो, लोग किसी और वजह से देते हैं? वे अपनी अन्तरात्मा को रिश्वत देते हैं मेरे दोस्त; इस वजह से वे भीख देते हैं, न कि इसलिए कि वे तुम्हारे लिए दुखी हैं! वे तुम्हारे रास्ते में रोटी का टुकड़ा फेंक देते हैं ताकि उनके अपने हलक़ में भोजन न अंटके। एक भरे पेट वाला आदमी एक जानवर होता है। और उस आदमी के प्रति, जो भूखा होता है, उसमें कोई रहम नहीं होती। वे एक-दूसरे के दुश्मन होते हैं—भरे पेट वाला आदमी और भूखा आदमी, और वे हरदम एक दूसरे की आँखों में रेत के समान चुभते रहेंगे। क्योंकि यह उनके लिए कतई मुमकिन नहीं कि वे एक-दूसरे को समझ सकें या एक-दूसरे पर रहम खा सकें...."

अपनी कड़वाहट और दु:ख में बूढ़ा ज्यादा से ज्यादा सजीव होता गया। उसके होंठ काँपने लगे। उसके पपोटों और बरौनियों के लाल फ्रेम में जड़ी बुझी बूढ़ी आँखें तेजी से झपकने लगीं और उसके साँवले चेहरे की झुर्रियाँ तनकर ज्यादा-से-ज्यादा साफ़ नज़र आने लगीं।

ल्योंका उसकी इस मन: स्थिति को पसन्द नहीं करता था और एक तरह का अस्पष्ट-सा भय भी महसूस करने लगता था।

"इसलिए मैं तुमसे पूछ रहा हूँ—ऐसी दुनिया में तुम क्या करने जा रहे हो? तुम एक बेचारे, बीमार लड़के हो, और यह दुनिया एक जानवर है। और यह तुम्हें एक ही गड़प में निगल जायेगी। और यही मैं नहीं चाहता हूँ.... मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, मेरे लाडले, इसीलिए! तुम्हीं वह सब कुछ हो जो मैंने पाया है और मैं ही वह सब कुछ हूँ जो तुमने पाया है...कैसे मैं मर सकता हूँ, ऐं? मैं मर नहीं सकता हूँ और तुम्हें छोड़ नहीं सकता... किसके साथ छोड़ूँ? हे भगवान! किस तरह तेरे ही सेवक तुझे अपमानित करते हैं? ज़िन्दा रहना मेरे बूते के बाहर की बात है, और मर मैं सकता नहीं, क्योंकि मुझे इस बच्चे की देखभाल करनी है! सात वर्षों से...मैं पालता आ रहा हूँ...अपनी बूढ़ी...बाहों में... हे भगवान, मेरी मदद करो!"

बूढ़ा बैठ गया और अपने कमज़ोर-अशक्त घुटनों में अपना सिर छिपा लिया। उसके आँसू फूट पड़े।

नदी तेजी से बहती हुई दूर चली जा रही थी और आवाज़ करती हुई किनारों पर

उछल रही थी मानो बूढ़े की कराह की आवाज़ को डुबो देना चाहती हो। बिना बादल का आकाश एक चमकदार मुस्कान मुस्कुरा रहा था और जलती हुई गर्मी बरसाते हुए बढ़ियाए हुए पानी के विद्रोही कोलाहल को शान्तिपूर्वक, ध्यान से सुन रहा था।

"अरे, दादा, मत रोवो", ल्योंका ने दूसरी ओर देखते हुए, शुष्कता से कहा, और फिर मुड़कर बूढ़े की ओर देखते हुए, बोला, "हम इन सबसे पार पा लेंगे। मेरा कुछ नहीं होगा। मैं कहीं किसी शराबख़ाने में नौकरी कर लूँगा..."

"वे तुम्हें पीट-पीटकर मार डालेंगे", आँसुओं के बीच बूढ़ा कराहा।

"और यह भी हो सकता है कि वे ऐसा न करें। वे ऐसा नहीं भी तो कर सकते हैं!" ल्योंका ने उद्दण्ड ढंग से, लगभग चुनौतीपूर्ण अन्दाज में बोला। "और ऐसा करें भी तो क्या? मैं कोई मेमना नहीं हूँ जो कोई मेरा ऊन कतर लेगा!"

इस बिन्दु पर ल्योंका अचानक किसी कारण से चुप लगा गया और, थोड़ी देर चुप रहने के बाद, फिर धीरे से बोला :

"और मैं कभी भी, किसी मठ में भी तो जा सकता हूँ।"

"यदि तुम अभी किसी मठ में जा पाते!" बूढ़े ने लम्बी साँस ली और फिर सुरसुरी के साथ बिना साँस लिए खाँसते-खाँसते बेदम हो गया। उनके सिर पर पहियों की खड़खड़ाहट सुनाई दी....

"नाव! ना...व! हे....!" एक भारी बुलन्द आवाज़ से हवा दरक-तिड़क गई।

वे अपनी गठरी-लाठी लिये हुए उछलकर खड़े हो गये।

एक भेदती हुई भारी आवाज़ के साथ बालू पर एक छकड़ा गाड़ी चली आ रही थी। उस पर एक कज्जाक खड़ा था। एक कान की तरफ कुछ ज्यादा ही झुकी रोंयेदार झबरीली टोपी से ढंके सिर को पीछे की ओर झटकते हुए वह एक बार फिर से चीखने की तैयारी में था। मुँह खोलकर भीतर हवा खींचते हुए, उसका चौड़ा, बाहर को निकला हुआ सीना और बाहर निकल आया था। उसकी खून जैसी लाल आँखों के ठीक नीचे से शुरू होने वाली दाढ़ी के रेशमी चौखटे में उसके सफ़ेद दाँत चमक रहे थे। उसके कन्धों पर लापरवाही से पड़े चोख़ा और खुली कमीज़ के नीचे से बालों से भरा, धूप में झुलसा धड़ झाँक रहा था। उसकी कद-काठी लम्बी चौड़ी

और शरीर ठोस था, उसका घोड़ा भी मोटा-ताजा, दैत्याकार और लाल अबलक था और उसकी गाड़ी के ऊँचे चक्कों पर मोटे टायर चढ़े हुए थे– सब कुछ से, मानो समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य टपक रहे थे।

"हे.....!.....हे.....!"

दादा और पोते ने अपनी टोपी उतार ली और सिर नीचे झुकाये।

"राम-राम!"

नवागन्तुक अचानक घुरघुराया और एक नज़र दूर दूसरे किनारे की ओर डाली जहाँ

काली-सी नाव

धीरे-धीरे और कुछ अजीबोग़रीब ढंग से झाड़ियों से बाहर निकल रही थी। उसके बाद उसने अपना पूरा ध्यान भिखारियों पर केन्द्रित किया। "रूस के हो, है न?"

"हाँ, दयालु मालिक, रूस के ही हैं!" आर्खिप ने सादर-झुकते हुए जवाब दिया।

"वहाँ खाने-पीने की चीज़ों की कमी हो गयी है, क्यों?"

वह गाड़ी से कूदकर ज़मीन पर उतरा और साज़ के कुछ हिस्सों को कसने लगा।

"तिलचट्टे तक वहाँ भूख से मर रहे हैं।"

"हो-हो! तिलचट्टे मर रहे हैं? यदि उनके लिए एक दाना भी नहीं बचा तो इसका मतलब तुम लोगों ने पूरी कठौती चाटकर चमका दी। काफी अच्छे भोजन-भट्ट हो तुम लोग। लेकिन कामग़ार ज़रूर खराब होगे। जैसे ही तुम ठीक से काम करना शुरू करोगे, तुम्हारे अकाल का अन्त हो जायेगा।"

"नहीं हमारे भले मालिक, दिक्कत धरती की है, उसमें अब कुछ नहीं रह गया है। वह अब उपजाऊ नहीं रह गई है। हमने उसे चूस-सोख लिया है।"

"धरती?" कज्जाक ने अपना सिर हिलाया। "धरती हर-हमेशा उपजाऊ होती है, अन्त तक वह इंसान को देती रहती है। हाथों को कहो, धरती को नहीं। हाथों का कुसूर है। अच्छे हाथों में, पत्थर तक फसल देने लगता है।"

नाव आ पहुँची।

दो तगड़े, लाल चेहरों वाले कज्जाक नाव की डेक पर अपने मोटे-मोटे पैर टिकाये खड़े थे। उन्होंने नाव को किनारे लगाया, उसके झटके से आगे-पीछे डगमगाये, रस्सा किनारे फेंका और फिर हाँफते हुए एक-दूसरे को देखने लगे।

"गर्मी है न?" नाव पर अपने घोड़े को चढ़ाते हुए नवागन्तुक अपनी टोपी छूते हुए दाँत निकालकर बोला।

"उहुँ!" नाव वालों में से एक ने कहा। अपनी शारोवरी में भीतर गहराई तक हाथ डाले हुए वह गाड़ी के पास गया, उसपर निगाह डाली और फिर जैसे किसी सुस्वादु चीज़ को सूँघते हुए अपने नथुने फड़काये।

दूसरा आदमी ज़मीन पर बैठ गया और, कराहते हुए, अपना एक बूट उतारने लगा।

ल्योंका और उसका दादा नाव पर सवार हो गये और कज्जाकों की ओर ध्यान लगाये हुए, किनारे से पीठ टिकाकर बैठ गये।

"ठीक है, अब चलें।" गाड़ी के मालिक ने निर्देश दिया।

"कुछ पीने लायक़ नहीं है तुम्हारे पास?" उस नाव वाले ने पूछा जो अभी गाड़ी

का निरीक्षण कर रहा था। उसके साथी ने अपना बूट उतार लिया था और अब आँखें सिकोड़कर उसे देख-जाँच रहा था।

"नहीं, कुछ नहीं है। क्यों? क्या कुबान का पानी सूख गया है?"

"पानी!...मेरा मतलब पानी से नहीं था।"

"तुम्हारा मतलब दारू से है? वो मैं साथ नहीं रखता।"

"ऐसा कैसे हो सकता है कि तुम्हारे पास हो ही न?" उससे बातचीत करने वाले ने नाव की फर्श पर निगाहें गड़ाये हुए ऊँची आवाज़ में आश्चर्य प्रकट किया।

"अच्छा, चलो, अब चलें!"

कज्जाक ने अपने हाथ थूक से गीले किये और रस्सी थाम्ह ली। मुसाफिर उसकी मदद करने लगा।

"ए दादा, तुम भी ज़रा हाथ क्यों नहीं लगा देते?" दूसरा नाव वाला जो अभी तक अपने जूते से उलझा हुआ था, आर्खिप की ओर मुखातिब हुआ।

"यह मेरे बूते के बाहर है, भाई!" बूढ़े ने एकरस, रें-रें करती आवाज़ में उत्तर दिया।

"और उन्हें मदद की कोई ज़रूरत भी नहीं है। वे खुद ही कर लेंगे।"

जैसे कि आर्खिप को अपनी बात की सच्चाई से सहमत करने के लिए, वह आदमी एक घुटने के बल उठा और फिर नाव की डेक पर लेट गया।

उसके साथी ने उसे अनमने ढंग से कोसा और, कोई जवाब न पाकर, ज़ोर से पैर पटकते हुए डेक पर जा चढ़ा।

धारा के लगातार दबाव और बाजुओं से टकराती लहरों की दबी-घुटी आवाज़ों के बीच, नाव हिलती-काँपती, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी।

पानी की ओर देखते हुए ल्योंका ने महसूस किया कि उसका सिर मीठे-मीठे ढंग से घूम रहा है और लहरों की तीव्रता से थककर उसकी आँखें निद्रालु होकर मुन्दी चली जा रही हैं। ऐसा लग रहा था जैसे दादा के बड़बड़ाने की मद्धम आवाज़े कहीं दूर से आ रही हैं। रस्सी की चरमराहट और लहरों के छपाकों की आवाज़ें उसे नींद के आगोश में धकेल रही थीं। एक निद्रालु शिथिलता से अवश वह डेक पर

पसर जाने को ही था कि अचानक किसी चीज़ ने उसे ज़ोर का झटका दिया और वह गिर पड़ा।

अपनी आँखें फाड़कर उसने अपने चारों ओर देखा। कज्जाक नाव किनारे लगाकर एक जले हुए ठूँठ से उसे बाँध रहे थे और उस पर हँस रहे थे।

"सो गये थे, है न? बेचारा नन्हा छोकरा! गाड़ी में बैठ जाओ। मैं तुम्हें गाँव तक छोड़ दूँगा। तुम भी बैठ जाओ कूदकर, दादा!"

जान-बूझकर सूँ-सूँ की आवाज़ निकालते हुए बूढ़े ने कज्जाक को धन्यवाद दिया और कराहते हुए गाड़ी में चढ़कर बैठ गया। उसके पीछे ल्योंका भी कूदकर चढ़ गया और उन्होंने खुद को बारीक काली धूल के बादल के बीच पाया। बूढ़ा इस क़दर खाँसने लगा कि उसके लिए साँस लेना मुश्किल हो गया।

कज्जाक गाने लगा। उसके गीत में विचित्र ध्वनियाँ थीं। स्वरों को वह बीच में ही तोड़ देता था और सीटी बजाने लगता था। ऐसा लग रहा था मानो वह ध्वनियों को एक उलझे हुए गोले से धागे सुलझाने के समान निकालता था और जैसे ही कोई गाँठ आती थी, तोड़ देता था।

पहिए विरोध के स्वर में चरमरा रहे थे, उनके नीचे से धूल ऊपर उठ रही थी और बूढ़ा, अपना सिर कँपाते हुए, लगातार खाँस रहा था, और ल्योंका सोच रहा था कि किस तरह, जल्दी ही वे गाँव पहुँच जायेंगे और खिड़कियों के नीचे नकियाते सुरों में "प्रभू यीशू ख्रीस्त" गायेंगे...एक बार फिर गाँव के लड़के उसे तंग करेंगे और औरतें रूस के बारे में अपने अन्तहीन सवालों से उसे उबा देंगी। ऐसे समय, अपने दादा को लगातार खाँसते हुए और तकलीफदेह हद तक, और भद्दे ढंग से, नीचे झुककर लगातार रिरियाती आवाज़ में, सिसकने-सुड़कने के विराम-चिन्ह लगाते हुए उन चीज़ों की कहानी बयान करते हुए देखना, जो कहीं भी घटित नहीं हुई थीं, उसके लिए बहुत यंत्रणादायी होता था।... वह बताता था कि किस तरह रूस में लोग सड़कों पर मर रहे हैं और किस तरह जहाँ वे गिरते हैं वहीं पड़े रह जाते हैं, क्योंकि उन्हें दफनाने वाला कोई नहीं है...भूख ने इस क़दर सभी लोगों को स्तम्भित कर दिया है और भावशून्य बना दिया है...ल्योंका और उसके दादा ने कहीं भी, कभी भी,

इस तरह की कोई चीज़ नहीं देखी थी। पर ज्यादा भीख इकट्ठा करने के लिए यह सब बताना ज़रूरी था। लेकिन दान में मिली चीज़ों का, दुनिया के इस कोने में कोई भला करता भी क्या? घर पर तो किसी भी बची हुई चीज़ को चालीस कोपेक में बेंचा जा सकता था या यहाँ तक कि एक पूद के लिए आधा रूबल भी हासिल किया जा सकता था, लेकिन यहाँ तो खरीदार मिलना ही असम्भव था। बाद में, अक्सर, सिवाय इसके और कोई चारा नहीं बचता था कि लोगों से मिले सुस्वादु खाद्य-पदार्थों से भरे अपने झोले वे स्तेपी में कहीं उलट आते थे।

"भीख इकट्ठा करने जा रहे हो?" कज्जाक ने दोनों के झुके शरीरों पर अपने कन्धे के ऊपर से निगाह डालते हुए पूछा।

"हाँ, मालिक!" आर्खिप ने एक लम्बी साँस के साथ जवाब दिया।

"खड़े हो जाओ, दादा, मैं तुम्हें दिखा दूँ कि मैं कहाँ रहता हूँ। तुम आ सकते हो और रात मेरे घर पर बिता सकते हो।"

बूढ़े ने खड़ा होने की कोशिश की, लेकिन लुढ़क गया और गाड़ी के किनारे से पीठ टिकाकर बैठ गया। उसके मुँह से एक दबी हुई कराह निकली।

"हूँ, तुम तो बहुत बूढ़े हो गये हो, है न?" कज्जाक हमदर्दी के साथ घरघराती आवाज़ में बोला। "ठीक है, कोई बात नहीं, देखने की कोई ज़रूरत नहीं; कभी ऐसा वक्त़ आये कि रात बिताने के लिए तुम्हें किसी जगह की दरकार हो, तो तुम चर्नी का घर पूछ लेना : अन्द्रेई चर्नी, यह मेरा नाम है। ठीक है, अब उतर जाओ यहीं। अलविदा!"

दादा-पोते ने खुद को काले और रुपहले पॉपलर-वृक्षों के एक स्टैण्ड के सामने खड़ा पाया। उनके तनों के बीच से छतों और बाड़ों की एक झलक दीख रही थी। उनके दायें-बायें, हर तरफ ऊँचे पेड़ों के वैसे ही स्टैण्ड थे। उनके हरे पत्ते भूरी धूल से ढँके हुए थे और उनके मोटे, कठोर तनों की छाल गर्मी से फट गई थी।

भिखारियों के ठीक सामने, ठट्ठर के बाड़ों की दो कतारों के बीच से एक सँकरी गली आगे की ओर जा रही थी। दोनों उसी रास्ते पर वैसे लम्बे, बेढंगे कदमों से चलने लगे, जैसे प्राय: ज्यादा समय पैदल चलने में गुजारने वाले भरा करते हैं।

"ठीक है, कैसे शुरू करें, एक साथ या अलग-अलग?" बूढ़े ने पूछा और फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही बोला, "एक साथ ही बेहतर रहेगा—तुम अकेले नहीं के बराबर ही जुटा पाते हो। भीख कैसे माँगी जाती है, यह तुम नहीं जानते..."

"और हमें उतने अधिक की ज़रूरत भी क्या है? आखिर हम किसी भी तरह से उसमें से कुछ बचा तो पाते नहीं..." ल्योंका ने अप्रसन्नता प्रकट करते हुए और उसे घूरते हुए जवाब दिया।

"क्या कहा, हमें ज़रूरत भी क्या है? तुममें एक दाना भी अक़्ल नहीं है, लड़के!...यदि हमें कोई मिल जाये और हम उसे वास्तव में फाँस लें, तो? वह हमें पैसे देगा। और पैसा रहना चाहिए : अगर तुम्हारी जेब में पैसे हों और थोड़ी किस्मत साथ दे, तो मेरे मरने के बाद तुम्हारा कोई नुकसान नहीं होगा।"

और, मुलायमियत से मुस्कुराते हुए, दादा ने पोते के सिर पर अपना हाथ फेरा।

"क्या तुम्हें पता है कि जबसे हम सड़क पर हैं, मैंने कितना जमा कर लिया है? ऐं?"

"कितना?" ल्योंका ने असम्पृक्त भाव से पूछा।

"साढ़े ग्यारह रूबल!...समझे?"

लेकिन ल्योंका न तो इस रकम की मात्रा से प्रभावित हुआ और न ही दादा के हर्षविह्वल गर्व-भरे स्वर से।

"ओह, बच्चे, मेरे बच्चे!" बूढ़े ने लम्बी साँस ली। "तो हम इसे अलग रख देंगे। क्यों? है न!"

"अलग..."

"हाँ...ठीक है, और फिर तुम चर्च में चले जाना।"

"ठीक है।"

आर्खिप बाईं ओर जाने वाली गली में मुड़ गया और ल्योंका सीधे आगे बढ़ गया। अभी वह दस कदम भी आगे नहीं गया होगा कि उसे लरजती-काँपती आवाज़ सुनाई दी : "दयालु-लोगो! दानी दाताओ!" याचना की आवाज़ यूँ लग रही थी मानो किसी ने अनसधे सितार के तारों पर अपने हाथ की हथेली रखकर उसे मन्द से ऊँचे

स्वर की ओर खींच दिया हो। ल्योंका के बदन में सिहरन सी हुई और वह और अधिक तेजी से आगे बढ़ने लगा। जब भी वह अपने दादा को भीख माँगते सुनता था तो बेचैनी और एक तरह की बेचारगी महसूस करने लगता था और, जब बूढ़े को इनकार सुनने को मिलता था तो उसे यह डर तक लगने लगता था कि कहीं उसका दादा रो न पड़े।

उसके दादा की आवाज़ के काँपते-लरजते, कारुणिक सुर गाँव के ऊपर, उनींदी उदास हवा में मण्डरा रहे थे और अभी भी उसके कानों में गूँज रहे थे। ल्योंका टट्टर के बाड़े तक गया और नीचे तक झुकी डालियों वाले चेरी के एक पेड़ की छाया में बैठ गया। पास ही कहीं से एक मधुमक्खी की अनुनादित होती हुई भनभन सुनाई दे रही थी...

ल्योंका ने अपनी गठरी उतारी और उस पर सिर टिकाकर लेट गया। अपने सिर के ऊपर, पत्तों के बीच से झाँकते आकाश को थोड़ी देर तक देखते रहने के बाद, वह गहरी नींद में डूब गया। घने, लम्बे ख़र-पतवार और झँझरीदार टट्टर के बाड़े की ओट के चलते आने-जाने वालों की निगाहें उस पर नहीं पड़ रहीं थीं।

ढलती हुई शाम की ताज़ा हवा में काँपती विचित्र ध्वनियों से अचानक उसकी नींद टूटी। उसके नज़दीक ही, कहीं कोई रो रहा था। यह एक बच्चे का रोना था– पूरे दिल से और एकदम बेइख़्तियार-बेकाबू। सिसकियों की आवाज़ ऊँचे लघुपदीय स्वरों पर पहुँचकर मद्धम पड़ने ही लगती थी कि अचानक नई सघनता के साथ एक बार फिर फूट पड़ती थी। लगातार धारा प्रवाह बहती रुलाई की यह आवाज़ निकट आती जा रही थी। ल्योंका ने अपना सिर उठाया और घास के बीच से, सामने गली में झाँका।

वहाँ, लगभग सात साल की एक लड़की चली आ रही थी। वह साफ-सुथरे कपड़े पहने हुए थी और उसका चेहरा लगातार रोने से लाल और सूजा हुआ था, जिसे वह अपने सफेद स्कर्ट के किनारे से लगातार पोंछने की कोशिश कर रही थी। अपने नंगे पैरों को घसीटते हुए और धूल को ठोकर मारते हुए वह धीरे-धीरे चल रही थी और लग रहा था मानो उसे यह भी भान न हो कि वह कहाँ जा रही है और

क्यों जा रही है। उसकी बड़ी-काली आँखें इस समय आहत, उदास और आँसुओं से लबरेज़ थीं। उसके खुले हुए, चेस्टनट जैसे बालों की लटें उसके ललाट पर, गालों पर और कन्धों पर झूल रहीं थीं और उनके बीच से छोटे, सुन्दर, गुलाबी, कान शरारत-भरे अन्दाज़ में झाँक रहे थे।

अपने आँसुओं के बावजूद वह ल्योंका को बहुत मजाकिया लगी....मजाकिया और जिन्दादिल...देखने से ही असली शैतान लगती थी।

"तुम किसलिए रो रही हो?" लड़की की बराबरी में आने के लिए घुटनों के बल बैठते हुए ल्योका ने पूछा।

उसने फिर रोना शुरू किया, पर जल्दी ही रोक दिया। बावजूद इसके, वह लगातार नाक सुड़क रही थी। उसने कुछ सेकेण्डों तक ल्योंका की ओर देखा, और उसके होंठ फिर से काँपने लगे, चेहरा सिकुड़ गया, सीना ऊपर उठा और रुलाई फिर से फूट पड़ी। रोती हुई वह आगे जाने लगी।

"मत रोवो! इत्ती बड़ी लड़की हो-तुम्हें शर्म नहीं आती रोते हुए?" ल्योंका उसकी ओर बढ़ते हुए कहता रहा। पास आकर उसने फिर झुककर उसके चेहरे की ओर देखा और फिर पूछा, "ठीक है, अब बताओ, क्यों तुम इस तरह रो-बिलख रही हो?"

"ओ-ओ-ह!" उसने कराहते-सिसकते कहा। "तुम्हें इससे क्या..." और फिर

अचानक वह सड़क पर धूल में लोट गयी और अपना चेहरा हाथों से ढंककर बेतहाशा, फूट-फूटकर रोने लगी।

"ठीक है!" ल्योंका ने जैसे आगे की अपनी ज़िम्मेदारी छोड़ते हुए तिरस्कार की मुद्रा में कहा। "औरतें! एकदम औरतों की तरह हरक़त कर रही हो तुम! लानत है!"

पर इससे दोनों के लिए कोई फ़र्क नहीं पड़ा। उसकी नाज़ुक, गुलाबी उंगलियों के बीच से बहते आंसुओं को देखकर ल्योंका ने खुद को दुखी महसूस किया। उसे खुद भी रोने को मन करने लगा। वह उसके ऊपर झुक गया और, सावधानी के साथ अपने हाथ से उसके बालों को नरमी से छुआ, लेकिन फिर अचानक उसने हाथ पीछे खींच लिया, जैसे कि अपनी ही ठिठाई से भयभीत हो गया हो।

"सुनो!" वास्तव में किसी तरह से उसकी मदद करने की चाहत शिद्दत के साथ महसूस करते हुए ल्योंका ने कहना शुरू किया। "तुम्हारे साथ हुआ क्या है?क्या किसी ने तुम्हें मारा है?क्यों?ठीक है, जल्दी ही तुम इसे भूल जाओगी। या कोई और बात है? बताओ न मुझे! ऐ!"

लड़की ने चेहरे से हाथ नहीं हटाये और दु:ख के साथ सिर हिलाया। अंततोगत्वा सिसकियों-हिचकियों के बीच उसने धीरे-धीरे जवाब दिया।

"मेरे सिर का स्कार्फ – वह खो गया!...पापा बाज़ार से लाये थे, नीले रंग का था, फूलदार, और मैंने इसे बांधा – और खो दिया।" और वह फिर फूट-फूटकर रो

पड़ी, पहले से भी ज्यादा तेज़, ज्यादा बेकाबू, हिचकियाँ लेती हुई और विलाप की विलक्षण आवाज़ें निकालती हुई : ऊँ-ऊँ-ऊँ!

ल्योंका ने उसकी सहायता करने के मामले में अपने को असहाय-सा महसूस किया। कायरतापूर्वक वह उससे थोड़ा पीछे हटा और कुछ सोचते हुए, उदासी के साथ अंधकारमय होते जा रहे आकाश की ओर देखा। वह करुणा से भर गया था और उस नन्हीं-सी लड़की के लिए काफी दुखी महसूस कर रहा था।

"अच्छा, चुप हो जाओ!...शायद वह मिल जाये..." उसने मद्धम आवाज़ में फुसफुसाते हुए कहा, लेकिन जब उसने देखा कि वह दिलासा देने की कोशिशों को सुन तक नहीं रही है, तो वह थोड़ा दूर हट गया और सोचने लगा कि स्कार्फ खो जाने के कारण शायद बाप के हाथों लड़की पर बुरी गुजरेगी। एकाएक उसने कल्पना की आँखों से उसके बाप को देखा, एक लहीम-शहीम, काला कज्जाक जो लड़की के ऊपर खड़ा है और उसे पीट रहा है और वह, भय और पीड़ा से काँपती हुई उसके पैरों के पास ज़मीन पर पड़ी हुई है और आँसुओं से उसका गला रुँधा हुआ है...

वह उठ खड़ा हुआ और आगे जाने लगा लेकिन, उससे पाँच कदम आगे जाने के बाद, वह अचानक लौट पड़ा और एकदम लड़की के सामने जाकर खड़ा हो गया और बाड़े से पीठ टिकाकर एकदम कोमल और दयालुतापूर्ण कुछ कहने के बारे में मशक्क़त के साथ सोचने लगा...

"आओ, बच्ची, सड़क पर से उठ जाओ! अच्छा, अब रोना बन्द करो, एकदम बन्द करो! घर जाओ और उनलोगों को सब कुछ बता दो, जो भी जैसे भी हुआ। बस कह दो कि वह तुमसे खो गया...क्या है, एक स्कार्फ ही तो है आखिर?"

उसने मद्धम, हमदर्दी भरी आवाज़ में बोलना शुरू किया और तिरस्कारपूर्ण उद्‌गार पर अपनी बात खतम करते हुए, लड़की को ज़मीन से उठते देखकर आह्लादित हो उठा।

"हाँ, ये हुई कुछ बात!" उत्साहित होकर, मुस्कुराते हुए उसने कहा। "अब तुम घर जाओ। क्या तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे साथ चलूँ और उन्हें सब कुछ बता दूँ इसके बारे में? मैं तुम्हारी हिमायत करुँगा, डरो मत।"

ल्योंका ने अभिमानपूर्वक अपने कन्धे चौड़े कर लिये और अपने चारों तरफ देखा।

"बेहतर होगा, तुम मत चलो..." उसने धीरे-धीरे अपने कपड़ों से धूल झाड़ते हुए और सिसकियों से जूझते हुए मद्धम आवाज़ में कहा।

"मैं चल सकता हूँ, अगर तुम चाहो तो," ल्योंका ने एकदम राजी-खुशी यह प्रस्ताव रखा और अपनी टोपी एक कान की तरफ नीचे तक खींच ली।

अब वह लड़की के एकदम सामने खड़ा था, अपने पैरों को फैलाये हुए, जिससे ऐसा लग रहा था मानो जो चिथड़े वह पहने हुए था, वे अवज्ञापूर्वक एक छोर पर खड़े हो गये थे। उसने दृढ़ता के साथ अपनी छड़ी धरती पर ठोंकी और लड़की के चेहरे पर पूरी निगाहें डालकर देखने लगा। उसकी बड़ी-बड़ी उदास आँखें निर्भीक गौरव से दमक रहीं थीं।

लड़की ने आँसू-भरे अपने छोटे-से चेहरे को पोंछने के बाद उसपर तिरछी निगाह डाली, और एक और लम्बी साँस लेती हुई, बोली :

"नहीं, यह ठीक नहीं होगा, तुम मत आओ...अम्मां भिखारियों को पसन्द नहीं करती।"

इसके बाद वह जाने लगी। उससे दूर जाते हुए उसने दो बार उसे मुड़-मुड़कर देखा।

ल्योंका जैसे जमीन पर आ गया। धीरे-धीरे, एकदम मन्द गति से उसने अपनी चुनौतीपूर्ण मुद्रा बदल ली, अपनी पीठ झुका ली, फिर से विनम्र मुद्रा अपना ली, और एक हाथ में झूल रही गठरी को फिर से कन्धे पर टाँग लिया। लड़की अब तक गली के मोड़ तक पहुँच चुकी थी। वह चिल्लाया :

"विदा!"

बिना रुके उसने मुड़कर उसे देखा और फिर गा़यब हो गई।

शाम नज़दीक आ रही थी। हवा एक ख़ास किस्म की घुटन भरी उमस से बोझिल हो रही थी, जैसा कि अक्सर तूफान आने से पहले महसूस होता है। सूरज आसमान में नीचे ढल चुका था और पॉपलर के पेड़ों की चोटियाँ एक नाजुक,

परावर्तित रोशनी से दमक रहीं थीं। साथ ही शाम की छायाएँ उनकी निचली टहनियों को ढँकती जा रही थीं और निश्चल खड़े लम्बे पेड़–और अधिक लम्बे और घने प्रतीत हो रहे थे...ऊपर आसमान में भी अँधेरा गहरा रहा था और वह ज्यादा से ज्यादा मखमली होता हुआ, धरती की ओर डूबता आ रहा था। दूर कहीं से लोगों के बात करने की आवाज़ आ रही थी तथा और भी अधिक दूर कहीं से गाने की आवाज़ आ रही थी। ये मद्धम, लेकिन समृद्ध और गहरी आवाजें भी उसी दमघोंटू भारीपन से भरीं हुई लग रहीं थीं।

ल्योंका और अधिक अकेलापन, बल्कि एक तरह की बेचैनी भी महसूस करने लगा। उसने दादा के साथ हो लेने का निश्चय किया, अपने इर्दगिर्द देखा और गली में तेजी से चलने लगा। वह भीख माँगने जैसा कुछ महसूस नहीं कर रहा था। वह चलता जा रहा था और महसूस कर रहा था कि उसके सीने में दिल तेजी के साथ धड़क रहा था। वह सोचने या चलने के प्रति एक खास किस्म की, सुस्ती भरी अनिच्छा से भर उठा था.... लेकिन साथ ही, वह उस नन्हीं लड़की को दिमाग़ से निकाल नहीं पा रहा था और सोचता भी जा रहा था : "उस पर अब क्या बीत रही होगी?यदि वह धनी घर की होगी, तब तो वे उसे पीटेंगे : सभी धनी कंजूस होते हैं; लेकिन यदि वह ग़रीब होगी तो हो सकता है कि वे उसे न पीटें...ग़रीब घरों में बच्चों को प्यार करते हैं, खासकर इसलिए कि घरवालों का ध्यान आगे उस समय पर होता है जब वे उनके कामों में हाथ बँटायेंगे।" एक के बाद एक, विचार, जिद्दी ढंग से उसके माथे में भनभना रहे थे और थका देने वाली, आत्मा को झुलसा देने वाली उदासी, जो इन विचारों का छाया की तरह पीछा कर रही थी, ज्यादा से ज्यादा बोझिल होती जा रही थी और उसे ज्यादा से ज्यादा मजबूती से जकड़ती जा रही थी।

शाम की छायाएँ और अधिक सघन और भारी हो गईं थीं। ल्योंका को अब बीच-बीच में कज्जाकों के और उनकी स्त्रियों के समूह मिलने लगे थे जो बिना उसकी ओर ध्यान दिये गुजर जाते थे। अकाल-पीड़ित रूसियों की बाढ़ के वे आदी हो चुके थे। वह भी, उनके भरे-पूरे, मजबूत शरीरों पर असम्पृक्त, शिथिल दृष्टि डालता हुआ, उनके बीच से होकर, तेजी से चर्च की ओर बढ़ता जा रहा था–

जिसका क्रॉस गाँव के ऊपर, उसके सामने चमक रहा था।

ठहरी हुई हवा में, सामने कहीं घर लौटती भेड़ों-बकरियों की आवाज़ें उभरीं। चर्च अब सामने दीख रहा था। यह एक कम ऊँचाई वाली, लम्बी-चौड़ी, नीले रंग के पाँच गुम्बदों वाली इमारत थी। पास रोपे गये पॉपलर क्रॉस से भी अधिक ऊँचाई तक पहुँच चुके थे। डूबते सूरज की रोशनी में नहाये हुए गुलाबी-सुनहले क्रॉस हरे पत्तों के बीच से झाँक रहे थे।

तभी उसकी निगाह चर्च की ड्योढ़ी के नज़दीक पहुँचते दादा पर पड़ी। वह अपनी गठरी के बोझ से झुका हुआ था और आँखों के ऊपर हाथ से छाँह करके इधर-उधर देखता हुआ उसे ढूँढ़ रहा था।

उसके दादा के पीछे, भारी, घिसटती चाल से चलता हुआ एक कज्जाक आ रहा था। उसकी टोपी आँखों तक नीची थी और हाथ में एक छड़ी थी।

"अच्छा, तो तुम्हारी झोली खाली है, है न!" दादा ने पोते की ओर बढ़ते हुए पूछा, जो उसका इंतज़ार करते हुए चर्च के अहाते के प्रवेश-द्वार पर रुक गया था। "देखो, मैंने कितना इकट्ठा कर लिया है!" उसने घुरघुराने जैसी आवाज़ करते हुए कसकर ठूँसी हुई किरमिच की एक बोरी कन्धे से ज़मीन पर पटक दी। "ऊफ! यहाँ के लोग बहुत कृपालु हैं! आह, यह बढ़िया है!... अच्छा, और तुम इस तरह मुँह क्यों लटकाये हुए हो?"

"मेरा सिर दर्द कर रहा है," ल्योंका ने अपने दादा के बगल में ज़मीन पर ढहते हुए धीमे स्वर में कहा।

"तुमने बताया नहीं?... थक गये हो?... अब हम चलेंगे और रात में आराम करेंगे। क्या नाम था भला उस कज्जाक का? ऐं?"

"अन्द्रेई चर्नी।"

"हम उनसे पूछेंगे : चर्नी कौन है, अन्द्रेई? वह कहाँ रहता है? यही पूछेंगे। कोई आ रहा है। हाँ... अच्छे लोग हैं, धनी-मानी। और वे और कुछ नहीं, सिर्फ़ गेहूँ की रोटी खाते हैं। सलाम, भले हुजूर!"

कज्जाक सीधे उनके पास आया और अर्थगर्भित ढंग से ज़ोर देकर बूढ़े के

अभिवादन का उत्तर दिया :

"और तुमको भी सलाम!"

इसके बाद वह अपनी टाँगें फैलाकर खड़ा हो गया, और अपनी बड़ी, अभिव्यक्तिहीन आँखें भिखारियों पर टिकाये हुए, बिना कुछ बोले अपना सिर खुजलाने लगा।

ल्योंका जिज्ञासापूर्वक उसे देखने लगा। आर्खिप सवालिया अन्दाज़ में अपनी आँखें झपकाता रहा। कज्जाक अभी भी चुप था और फिर, वह अपनी आधी जीभ बाहर निकालकर अपनी मूँछों के सिरे टटोलने लगा। फिर अपनी इस मुहिम में कामयाबी हासिल करने के बाद वह मूँछों को मुँह में दबाकर चूसने लगा और चबाने लगा। फिर उसने उन्हें अपनी जीभ की नोंक से बाहर धकेल दिया। अन्त में, चुप्पी को, जो अब काफी बोझिल हो चुकी थी, तोड़ते हुए वह आलस के साथ, धीरे-धीरे बोला:

"मेरे साथ हेडक्वार्टर्स तक चलना होगा तुम्हें।"

"किसलिए?" बूढ़े ने अचानक हड़बड़ाते हुए पूछा।

"हुक्म है। मेरे साथ चलो।"

वह मुड़ गया और चलने को हुआ, पर, पीछे मुड़कर देखने पर जब पाया कि उनमें से कोई अभी उठा नहीं है, तो बिना उनकी ओर देखे, फिर चिल्लाया, इस बार तीखे स्वर में :

"किस बात का इंतज़ार कर रहे हो तुम?"

तब ल्योंका और उसका दादा उसके पीछे चल पड़े।

ल्योंका ने निगाहें अपने दादा पर टिका दीं। बूढ़े का सिर और होंठ जिस तरह काँप रहे थे, जिस तरह घबराकर वह अपने इर्द-गिर्द देख रहा था और जिस तरह हड़बड़ी में अपनी कमीज़ के नीचे टटोल रहा था, उसे देखकर ल्योंका समझ गया कि निश्चय ही बूढ़े ने फिर कुछ गड़बड़ किया है, जैसाकि पिछली बार उसने तामान में किया था। उस समय बूढ़े ने धुलने के बाद सूखने के लिए टँगें कुछ कपड़े चुरा लिए थे और उनके साथ पकड़ा गया था।

तब उन लोगों ने उसकी खिल्ली उड़ाई, उसे बुरा-भला कहा, पीटा भी और अन्त में, आधी रात को उसे गाँव से बाहर निकाल दिया। उस रात वे समुद्र के किनारे बालू पर सोये थे। सारी रात समुद्र उन्हें धमकाते हुए गुर्राता-गरजता रहा... आती-जाती लहरों से खिसकती बालू किर-किर की आवाज़ करती रही और सारी रात उसका दादा कराहता रहा और अपने को चोर कहते हुए और क्षमा माँगते हुए, फुसफुसाती आवाज़ में ईश्वर से प्रार्थना करता रहा।

"ल्योंका..."

ल्योंका ने अचानक अपनी पँसलियों में कोंचने जैसा कुछ महसूस किया और चौंककर दादा की ओर देखा। बूढ़े का चेहरा उड़ा और खिंचा हुआ था, उसपर जैसे राख पुती थी और वह काँप रहा था।

कज्जाक उनसे पाँच कदम आगे पाइप पीता हुआ और भटकटैया की झाड़ियों पर छड़ी से चोट करता हुआ चल रहा था और पीछे मुड़कर यह देख भी नहीं रहा था कि वे उसके

पीछे आ रहे हैं या नहीं।

"इसे लो, पकड़ो!... फेंक दो इसे...उधर घास में... और उस जगह को पहचान लो, जहाँ इसे फेंक रहे हो!...ताकि बाद में इसे उठा लिया जाये..." दादा ने मुश्किल से सुनी जा सकने लायक आवाज़ में फुसफुसाकर कहा और पोते से एकदम सटकर चलते हुए उसने कसकर लपेटे हुए कपड़े का एक टुकड़ा उसके हाथ में थम्हा दिया।

ल्योंका एक तरफ को हो गया। भय से वह काँप रहा था। उसका बदन जैसे जमता जा रहा था। वह बाड़ से सटकर चलने लगा जिसके नीचे घने खर-पतवार उगे हुए थे। कज्जाक की चौड़ी पीठ की ओर देखते हुए उसने हाथ बाहर निकाला और कपड़े के टुकड़े पर जल्दी से एक नज़र डालते हुए उसे घास पर गिरा दिया।

गिरने के साथ ही कपड़ा खुल गया और नीले रंग के फूलों वाला एक स्कार्फ एक पल के लिए ल्योंका की आँखों के सामने कौंध-सा गया। और फिर उसके विलुप्त होते ही, उसकी आँखों के सामने एक रोती हुई छोटी-सी लड़की की तस्वीर आ गई। वह उसे एकदम साफ-साफ देख सकता था, मानो कज्जाक को, उसके दादा को और आसपास की सभी चीज़ों को ओझल करती हुई वह उसके सामने खड़ी थी...उसकी सिसकियों की आवाज़ ल्योंका के कानों को एक बार फिर एकदम स्पष्ट सुनाई पड़ने लगीं और उसे ऐसा लगा मानो उसके आँसुओं की पारदर्शी बूँदें उसके सामने ज़मीन पर बरसती जा रही थीं।

इस लगभग संज्ञाहीन-सी स्थिति में वह अपने दादा के पीछे कज्जाक हेडक्वार्टर्स की ओर घिसटता रहा। वहाँ उसके कानों में शब्दों की गहरी भनभनाहट गूँजती रही, जिन्हें समझने की उसने कोई कोशिश नहीं की। मानो कुहासे जैसे धुँधलके के बीच से वह एक बड़ी-सी टेबुल पर अपने दादा की गठरी को खाली किये जाते हुए देखता रहा और उस पर गिरती हुई तरह-तरह की चीज़ों की आवाज़ें सुनता रहा...फिर ऊँचे टोप पहने कई सिर टेबुल पर झुक गये; सभी सिर और टोप काले थे और त्योरियाँ चढ़ाये हुए थे और उनके इर्द-गिर्द छाये कोहरे के बीच से कोई भयानक ख़तरा उभर रहा था। तब, अचानक, दो हट्टे-कट्टे नौजवानों के हाथों में, लट्टू की तरह घूमते हुए उसके दादा ने फटी हुई आवाज़ में कुछ बुदबुदाना शुरू

कर दिया....

"तुम ग़लत पटरी पर हो, भले ईसाइयो। जैसा ईश्वर मुझे देख रहा है, मैं गुनहगार नहीं हूँ।" उसका दादा भेदती-हुई आवाज़ में चिल्लाया।

ल्योंका के आँसू फूट पड़े और वह फ़र्श पर ढह गया।

तब वे उसके पास आये और उसे उठाकर बेंच पर बैठाया और उन सभी चिथड़ों की तलाशी ली जो उसके छोटे से, दुबले-पतले शरीर को ढँके हुए थे।

"दानिलोव्ना झूठ बोल रही है। घिनौनी औरत!" कोई ऊँची, क्रुद्ध आवाज़ में गरजा, जो ल्योंका के लिए वैसी ही तकलीफ़देह थी जैसे किसी ने कानों पर मुक्के जड़ दिये हों।

"हो सकता है कि उन्होंने उसे कहीं छिपा दिया हो?" जवाब में दिया गया सुझाव और अधिक तेज़ आवाज़ में था।

ल्योंका को लगा जैसे कि ये सारी आवाज़ें एकदम उसके सिर पर चोट कर रही हों और वह सहसा इतना डर गया कि उसकी चेतना लुप्त होने लगी। उसे ऐसा महसूस हुआ मानो उसने एक अँधेरे-अथाह गड्ढे में सिर के बल छलाँग लगा दी हो जिसने उसे लील जाने के लिए अचानक अपना मुँह खोल दिया हो।

उसने जब अपनी आँखें खोलीं तो उसका सिर दादा के घुटनों पर पड़ा हुआ था और दादा का चेहरा उसके ऊपर झुका हुआ, पहले से भी अधिक दयनीय और सामान्य से अधिक झुर्रियों से भरा हुआ लग रहा था। दादा की घबराहट से झपकती आँखों से बहते आँसू उसके ललाट पर गिर रहे थे और उसके गालों से होकर नीचे गले की ओर बहते हुए बुरी तरह गुदगुदी पैदा कर रहे थे...

"तुम ठीक हो न बेटे? चलो, यहाँ से चलें। चलो, उन्होंने हमें छोड़ दिया है। लानत है उनपर!"

ल्योंका उठ बैठा। उसे लग रहा था जैसे कुछ भारी-भारी सा उसके सिर से बह रहा है और वह किसी भी क्षण उसके कन्धों से टपकने लगेगा। उसने अपना सिर हाथों में थाम्ह लिया, उसे हिलाया-डुलाया और धीमे से कराहा।

"तुम्हारा सिर दर्द कर रहा है। है न! मेरा बेचारा नन्हा बच्चा!... हमारी ज़िन्दगी

हमसे छीन ली है इन लोगों ने...जानवर! तुम देख रहे हो न! एक खंजर खो गया और एक छोटी बच्ची ने अपना स्कार्फ खो दिया, और तब वे और भला करते ही क्या? बस गये और हमारे खिलाफ इकट्ठा हो गये! हे ईश्वर, प्रभू! तुम हमें किस बात की सजा दे रहे हो?"

बूढ़े की घरघराती आवाज़ ने ल्योंका के मर्मस्थल के घाव को फिर हरा कर दिया और उसने महसूस किया कि उसके भीतर कोई चुभती हुई चिनगारी जल उठी है। थोड़ी दूरी लेकर उसने अपने चारोंतरफ देखा...

वे गाँव के बाहर एक गाँठदार, काले पॉपलर की घनी छाया में बैठे हुए थे। रात हो चुकी थी, चाँद ऊपर चढ़ आया था और स्तेपी के सपाट अथाह विस्तार पर अपनी दूधिया, रुपहली रोशनी बरसा रहा था। दूधिया चाँदनी में स्तेपी, दिन के मुकाबले, संकुचित लग रही थी, पर साथ ही, और अधिक उजाड़-उदास और मनहूस भी प्रतीत हो रही थी। दूर, जिस सीमान्त रेखा पर स्तेपी आकाश में विलीन हो रही थी, वहाँ से बादल चुपचाप ऊपर उठ रहे थे और चुपचाप स्तेपी के ऊपर

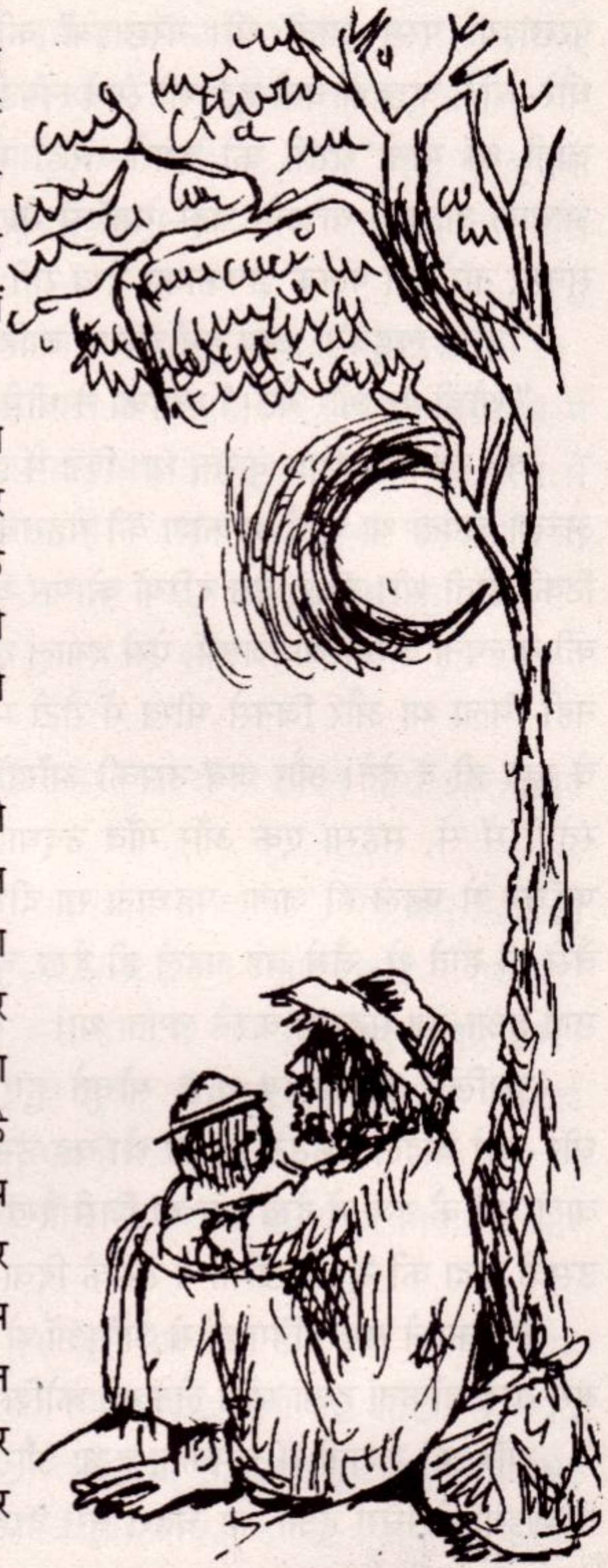

तैर रहे थे। बीच-बीच में वे चाँद को ढँक लेते थे और नीचे धरती पर उनकी अभेद्य परछाइयाँ पसर जाती थीं। परछाइयों की मोटी परत धरती पर पड़ती थीं और धीरे-धीरे, कुछ सोचती हुई-सी रेंगने लगती थीं और फिर, अचानक वे यूँ विलुप्त हो जाती थीं मानो धरती की दरारों-तरेड़ों में कहीं छुप गईं हों.....गाँव की ओर से आवाज़ें आ रही थीं और यहाँ-वहाँ से रोशनियाँ कौंध पड़ रही थीं, मानो चमकदार, सुनहरे तारों को पलक झपकाकर देख रही हों।

"उठो, लड़के!...अब हमें चलना चाहिए," दादा ने कहा।

"थोड़ी देर और बैठें!" ल्योंका ने धीमे स्वर में कहा।

वह स्तेपी से प्यार करता था। दिन में इसमें चलते हुए उसे आगे उस ओर देखना अच्छा लगता था जहाँ आकाश की मेहराबी छत नीचे आकर इसकी चौड़ी छाती पर टिकी होती थी। उधर, उन दूरियों के पार वह बड़े और आश्चर्यजनक शहरों के होने की कल्पना करता था जिनमें, ऐसे दयालु लोग रहते थे जैसे लोगों से वह पहले कभी नहीं मिला था और जिनसे भीख में रोटी माँगने की ज़रूरत ही नहीं थी। बिना माँगे, वे खुद ही दे देते। और जब उसकी आँखों के सामने ज्यादा से ज्यादा फैलती जाती स्तेपी में से, सहसा एक और गाँव उद्घाटित होकर सामने आ जाता था, जो वहाँ पहुँचने से पहले ही जाना-पहचाना सा दीखता था और जिसके घर और लोग ठीक वैसे ही होते थे, जैसे वह पहले ही देख चुका होता था; तो वह उदास, आहत और ठगा हुआ-सा महसूस करने लगता था।

इसलिए इस समय कुछ सोचते हुए वह दूर उस तरफ़ देख रहा था जहाँ धीरे-धीरे बादल इकट्ठा हो रहे थे। वह उन्हें उस शहर की हजारों चिमनियों से उठने वाले धुएँ के रूप में देख रहा था जिसे देखने के लिए वह इस कदर बेताब था... तभी उसके दादा की सूखी खाँसी ने उसके दिवा-स्वप्न को भंग कर दिया।

ल्योंका ने सख़्त निगाहों से आँसुओं से भीगे हुए दादा के चेहरे की ओर देखा जो बुरी तरह हाँफता हुआ साँस लेने की कोशिश कर रहा था।

चाँद की रोशनी में चमकता हुआ और जर्जर टोपी, भौंहों और दाढ़ी की विचित्र परछाइयों से घिरा हुआ यह चेहरा बुरी तरह हिलते-खाँसते मुँह और किसी तरह के

गुप्त हर्षातिरेक से दमकती एकदम फटी-फटी सी आँखों के साथ, एक ही साथ डरावना और कारुणिक–दोनों लग रहा था। इससे ल्योंका के भीतर एक तरह की नई भावना जागी जिसके चलते वह अपने दादा से थोड़ा अलग हटकर बैठ गया...

"ठीक है, हम थोड़ी देर और बैठेंगे, और फिर, थोड़ी देर और!" बूढ़ा बुदबुदाया और फिर मूर्खतापूर्ण ढंग से खिलखिलाते हुए, अपनी कमीज़ में सामने, भीतर कुछ टटोलने लगा।

ल्योंका ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया और फिर दूर स्तेपी में देखने लगा।

"ल्योंका! इधर देखो!" अचानक उसके दादा ने उत्साह और विस्मय भरे स्वर में कहा, और एक बार फिर दमघोंटू खाँसी से दोहरा होते हुए अपने पोते के हाथ में एक लम्बी और चमकदार-सी कोई चीज़ रख दी। "इस पर चाँदी की नक्काशी की हुई है! चाँदी की, सुन रहे हो न?कम से कम पचास रूबल की तो होगी ही!...

उसके हाथ और होंठ दर्द और धन के लोभ से काँप रहे थे और उसका पूरा चेहरा ऐंठ रहा था।

"छुपा लो! उफ्फ, दादा! छुपा लो जल्दी इसे!" जल्दी से अपने चारों ओर देखते हुए, वह याचना के स्वर में फुसफुसाया।

"अब तुम्हें क्या हो गया, मूर्ख लड़के? डर गये, मेरे प्यारे?... मैंने बस खिड़की में देखा और वहाँ यह टँगा हुआ था... मैंने इसे झपट लिया–और–कोट के भीतर... और फिर मैंने इसे झाड़ियों में छुपा दिया। जैसे ही हम गाँव से बाहर निकले, मैंने अपनी टोपी गिरा देने का दिखावा किया, नीचे झुका और इसे उठा लिया... वे मूर्ख हैं!...और फिर मुझे स्कार्फ मिल गया–देखो, यह है!"

काँपते हाथों से उसने अपने चिथड़ों के बीच से स्कार्फ खींचकर निकाला और ल्योंका की नाक के सामने लहराया।

ल्योंका की आँखों के सामने धुँध का एक पर्दा गिर पड़ा और उस पर यह चित्र उभरा : वह और उसका दादा, गाँव की मुख्य सड़क पर, लोगों की आँखों से बचते हुए, डरे हुए, जितनी तेजी से चल सकते हैं, उतनी तेजी से चलते हुए जा रहे हैं और ल्योंका को लगता है कि जो भी चाहे, उसे उनको पीटने का, उनपर थूकने का उनपर

गालियों की बौछार कर देने का अधिकार है...आसपास की सारी चीज़ें, बाड़, घर और पेड़ एक विचित्र किस्म के कुहासे में, मानो तेज हवा के झोंके से भागे जा रहे हैं...और क्रुद्ध-कठोर आवाज़ों की भन-भन चारों ओर गूँज रही है...

यह कठिन यंत्रणादायी रास्ता फैलता जा रहा है, फैलता जा रहा है और गाँव से खेतों की ओर निकलने का रास्ता भागते-दौड़ते घरों के बीच छुप गया है, जो कभी उनकी ओर यूँ झुकने लगते हैं मानो उन्हें कुचल देना चाहते हैं, तो कभी ऐन उनके चेहरों के सामने काले धब्बों से हँसते हुए पीछे हट जाते हैं, ये काले धब्बे उनकी खिड़कियाँ हैं...और अचानक एक खिड़की से एक चीख गूँजती है : "चोर! चोर! चोर और उठाईगीर!" ल्योंका आवाज़ की दिशा में नज़र दौड़ाता है और वहाँ एक खिड़की में उसी छोटी बच्ची को खड़ा पाता है जिसे कुछ ही देर पहले उसने रोते हुए देखा था और जिसकी वह हिफाजत करना चाहता था। वह ल्योंका को देखते हुए देख लेती है और अपनी जीभ बाहर निकाल देती है, उसकी काली आँखें, गुस्से से, तीखेपन के साथ चमक रही हैं और ल्योंका को सुइयों की तरह बेध रही हैं।

यह तस्वीर लड़के के दिमाग में उभरी और तत्क्षण विलुप्त भी हो गई, अपने पीछे एक दुर्भावनापूर्ण मुस्कान छोड़कर, जिसके साथ अब वह अपने दादा के सामने बैठा था।

बूढ़ा अभी भी, बीच-बीच में खाँसता हुआ, बुदबुदा रहा था, कुछ इशारे कर रहा था, अपना सिर हिला रहा था और अपने चेहरे की झुर्रियों से पसीने की बड़ी-बड़ी बूँदों को पोंछता जा रहा था।

फटे-पुराने चिथड़े-सा भारी बादल का एक टुकड़ा ऊपर चढ़ आया था और चाँद को उसने ढँक लिया था, और ल्योंका अपने दादा का चेहरा मुश्किल से ही देख पा रहा था... लेकिन उसके सामने उसने रोती हुई बच्ची की तस्वीर को रखा, उसके द्वारा आहत, आँसुओं से सराबोर, लेकिन स्वस्थ, ताज़ा और सुन्दर। चरमराते-जोड़ों और किरकिराती आवाज़ वाला, बीमार, धन-लोलुप, जर्जर ल्योंका का दादा उसे एकाएक एकदम फालतू लगा—एकदम परी कथाओं के काश्ची जैसा दुष्ट और घृणित। वह ऐसा कैसे कर सका? क्यों उसने उस बच्ची को चोट पहुँचाई? वह

उसकी कुछ नहीं लगती थी....

और उसका दादा घरघराती आवाज़ में बोलता जा रहा था :.

"अगर किसी तरह से मैं सौ डालर बचा लेता!...तो मैं निश्चिन्त होकर मर सकता..."

"बन्द करो यह सब!" ल्योंका के भीतर जैसे कुछ भड़क उठा। "बेहतर होगा कि अपना मुँह बन्द रखो। मैं मर जाता, मैं मर जाता, कहते रहते हो... लेकिन मरते नहीं हो तुम... तुम चोरी करते हो!" ल्योंका चीत्कार उठा और सहसा, काँपता हुआ, उछलकर खड़ा हो गया, "तुम एक पुराने चोर हो!...ऊ-ऊ!" और वह अपनी सूखी छोटी-सी मुट्ठी भींचकर उसे अपने अचानक चुप हो गये दादा की नाक के सामने लहराने लगा और फिर एकाएक धम्म से ज़मीन पर बैठ गया। दाँत पीसते हुए उसने बोलना जारी रखा, "तुमने एक बच्चे से चोरी की... आह, कितना सुन्दर व्यवहार है!. ..बुड्ढे हो गये और अभी भी पाप करने से बाज नहीं आते... तुम्हें तो इसके लिए स्वर्ग में भी माफ़ी नहीं मिलेगी!"

अचानक एक कौंध-सी पैदा हुई और पूरी स्तेपी, एक छोर से दूसरे छोर तक, अपने अनन्त विस्तार को उद्घाटित करती हुई, एक अन्धा कर देने वाली नीली रोशनी के साथ चमक उठी। उसे अपने भीतर छुपा रखने वाला अंधकार का पर्दा, पल भर के लिए उठ गया... बिजली की कड़क सुनाई दी। पूरी स्तेपी को कँपाती उसकी गरज ने धरती को और आकाश को हिला-सा दिया जो अब तेजी से उड़ते काले बादलों के झुण्डों से ढँक चुका था। चाँद उनमें गुम हो चुका था।

अँधेरा बहुत अधिक गहरा हो गया। दूर कहीं बिजली चुपचाप लेकिन डरावने ढंग से खेल रही थी, और एक सेकेण्ड बाद, बादलों की मद्धम गुर्राहट सुनाई दे रही थी। और फिर सन्नाटा छा जाता था, एक ऐसा सन्नाटा जो, लगता था कि, कभी टूटेगा ही नहीं।

ल्योंका ने अपने को तिरछा किया। उसका दादा एकदम चुप, जड़-सा बैठा हुआ था। ऐसा लग रहा था मानो पेड़ के जिस तने से वह टेक लगाये बैठा था, उसी का एक हिस्सा बन गया हो।

"दादा!" ल्योंका बिजली के फिर से कड़कने का इन्तज़ार करते हुए, भयभीत स्वर में फुसफुसाया। "चलो, गाँव वापस लौट चलें।"

आसमान काँपा और धरती पर प्रचण्ड धात्विक शक्ति से प्रहार करते हुए नीली लपटों के साथ धधक उठा। ऐसा लगा मानो लोहे की हज़ारों चद्दरें आकाश से धरती पर बिखेर दी गईं हों और नीचे गिरती हुई वे एक-दूसरे से टकरा रही हों...

"दादा!" ल्योंका चिल्लाया।

उसकी चीख बिजली की कड़क की प्रतिध्वनियों के बीच खो गई और एक छोटी-सी टूटी हुई घण्टी की खनखनाहट जैसी प्रतीत हुई।

"क्या बात है? डर गये?" उसका दादा बिना हिले हुए, फटी आवाज़ में बोला।

बारिश की बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं थीं और उनकी फुसफुसाहट इतनी रहस्यमय लग रही थी मानो कोई चेतावनी दे रहा हो.... दूर यह आवाज़ तेज होकर व्यापक हो गई थी और लगातार यूँ सुनाई दे रही थी जैसे कि एक बहुत बड़े झाड़ू से सूखी ज़मीन को बुहारा जा रहा हो–लेकिन यहाँ, जहाँ वे दोनों बैठे थे, धरती पर गिरने वाली हर बूँद की आवाज़ संक्षिप्त और तीक्ष्ण होती थी और बिना किसी प्रतिध्वनि के ही, शान्त हो जा रही थी। बिजली की कड़क नज़दीक, और नज़दीक आती जा रही थी और आसमान और अधिक जल्दी-जल्दी धधक उठने लग रहा था।

"मैं गाँव में नहीं जाऊँगा। बारिश को मुझे यहीं डुबो देने दो, बूढ़ा कुत्ता, चोर हूँ मैं, मुझपर बिजली गिर जाये और मैं मर जाऊँ," आर्खिप साँस लेने के लिए जूझता हुआ कहता रहा। "मैं नहीं जाऊँगा। तुम अकेले जाओ...वो रहा गाँव... चले जाओ! मैं नहीं चाहता कि तुम यहाँ बैठे रहो... चले जाओ! जाओ, जाओ!...जाओ!..."

बूढ़ा चिल्लाने लगा था, फटी हुई आवाज़ में जो अनुनादित नहीं हो रही थी।

"दादा!...माफ कर दो मुझे!" ल्योंका नज़दीक खिसककर याचना के स्वर में बोला।

"मैं नहीं जाऊँगा...मैं नहीं माफ़ करुँगा... सात साल मैंने तुम्हें माँ की तरह पाला-पोसा है!... सबकुछ...तुम्हारे लिए... मैं ज़िन्दा रहा... तुम्हारे लिए। तुम क्या

सोचते हो मुझे अपने लिए किसी चीज़ की ज़रूरत है?... मैं मर रहा हूँ। मर रहा हूँ... और तुम कहते हो—चोर... मैं चोर क्यों हूँ? तुम्हारे लिए... यह सब कुछ तुम्हारे लिए है... सब कुछ, ले जाओ इसे... ले जाओ... जाओ...तुम्हारी ज़िन्दगी बनाने के लिए... तुम्हारे लिए... मैंने बचाया...और हाँ, मैंने चुराया... भगवान सब कुछ देखता है... वह जानता है...कि मैंने चुराया...जानता है... वह मुझे सज़ा देगा। वह मुझे माफ़ नहीं करेगा, बुड्ढा कुत्ता हूँ न मैं...चोरी करने के लिए। वह मुझे पहले ही सज़ा दे चुका है.... प्रभू! क्या तुमने मुझे सज़ा दी है?... क्यों? दी है न?... तूने एक बच्चे के हाथों मेरा वध करा दिया!...ठीक किया, प्रभू!...बिल्कुल ठीक!...तू न्यायशील है, प्रभू!... अब मेरी आत्मा को बुला लो...ओह!"

बूढ़े की आवाज़ ऊपर उठती हुई एक बेधती चीत्कार में बदल गई जिससे ल्योंका के सीने में आतंक की लहर-सी दौड़ गयी।

बादलों की कड़क पूरी स्तेपी को कँपा रही थी और प्रतिध्वनियों की हलचल-भरी अव्यवस्था से आकाश गुँजायमान हो रहा था। ऐसा लग रहा था मानों दोनों ही धरती से कोई महत्वपूर्ण और ज़रूरी बात कहना चाहते थे और लगभग लगातार गरजते हुए एक-दूसरे की आवाज़ दबा देने की हड़बड़ी में थे। बिजली से विदीर्ण आकाश थरथरा रहा था और पूरी स्तेपी गड़गड़ा रही थी। कभी वह नीली आग में धधक उठती थी तो कभी ठण्डे, घने, बोझिल अंधकार में डूब जाती थी जिसके चलते वह आश्चर्यजनक रूप से छोटी और संकुचित लगने लगती थी। कभी-कभी बिजली स्तेपी के सर्वाधिक सुदूरवर्ती हिस्सों को भी प्रकाशित कर देती थी। और ऐसा लग रहा था कि ये सुदूरवर्ती हिस्से इस पूरे कोलाहल और गर्जन से, हड़बड़ाये हुए दूर भागते जा रहे हों।

बारिश तेज होती जा रही थी और बिजली की कौंध में इसकी बूँदे इस्पात की तरह चमक रही थीं और गाँव से आ रही रोशनियों की आमंत्रण देती टिमटिमाहट को ओझल कर दे रही थीं।

ल्योंका भय, ठण्ड और अपने दादा के फूट पड़ने से पैदा हुए एक अप्रिय किस्म के अपराध-बोध से जड़ हो गया था। वह आँखें फाड़े हुए एकदम सामने देख रहा

था और इस तरह भयाक्रान्त था कि बारिश से भीगे उसके बालों से पानी की बूँदें बहकर उसकी आँखों में जा रही थीं और तब भी वह उन्हें झपका नहीं रहा था। वह अपने दादा की आवाज़ प्रचण्ड-ध्वनियों के सागर में डूबते हुए सुन रहा था।

ल्योंका ने महसूस किया कि उसका दादा एकदम निश्चल बैठा हुआ है, लेकिन उसे ऐसा लग रहा था मानो वह ग़ायब हो जाने वाला हो, कहीं भी चले जाने वाला हो और उसे एकदम अकेला छोड़ देने वाला हो। वह क्या कर रहा है, लगभग यह जाने बिना वह अपने दादा के नज़दीक खिसकता जा रहा था और जब उसने उसे अपनी कुहनी से छुआ, तो किसी भयंकर चीज़ के अंदेशे से काँप उठा।

आसमान को चीरती हुई बिजली ने उन दोनों को आलोकित कर दिया। वे अगल-बगल बैठे थे, झुके हुए और छोटे-छोटे, पेड़ों की टहनियों से धारासार गिरते पानी के नीचे...

दादा अपनी बाँहें हवा में लहरा रहा था और अब भी कुछ बुदबुदाता जा रहा था, लेकिन थके हुए स्वर में। वह काफी मुश्किल से साँस ले पा रहा था।

ल्योंका ने उसके चेहरे की ओर देखा और भय से चीख पड़ा... बिजली की नीली चमक में वह मृत लग रहा था और उसकी सुस्त, गोल-गोल घूमती आँखें किसी पागल की आँखों जैसी लग रहीं थीं।

"दादा! चलो!!" दादा के घुटनों में मुँह छिपाते हुए वह चीत्कार उठा।

बूढ़ा उसके ऊपर झुका और उसे अपने दुबले-पतले, हड़ियल बाँहों के घेरे में ले लिया और फिर, उसे ज़ोर से आलिंगन में जकड़ते हुए उसने अचानक, फँदे में फँसे हुए भेड़िये जैसी तेज, बेधती हुई हुँआने जैसी आवाज़ निकली।

हुँआने की इस आवाज़ को सुनकर ल्योंका जैसे विक्षिप्त-सा हो गया। उसने अपने को छुड़ाकर अलग किया, उछलकर खड़ा हुआ और सीधे सामने की ओर भागने लगा। उसकी आँखें फटी हुई थीं और बिजली की कौंध से वह अन्धा हो गया था। गिरते हुए, रेंगते हुए, फिर उठते हुए वह आगे भागता हुआ सामने फैले उस अंधकार में गहरे धँसता चला गया जो बीच-बीच में बिजली की नीली लौ से छिन्न-भिन्न हो जाता था और फिर आतंकित लड़के के आसपास एकदम सघन

होकर घेराबन्दी कर लेता था।

बारिश की आवाज़ ठण्डी, एकरस और विषादपूर्ण थी। और ऐसा लग रहा था मानो समूची स्तेपी में कोई नहीं था और कुछ भी नहीं था और सिर्फ़ बारिश की आवाज़ थी और बिजली की चमक थी और बादलों का क्रुद्ध गर्जन था।

अगले दिन सुबह, कुछ बच्चे, जो दौड़ते हुए गाँव के बाहर तक चले गये थे, वे तत्काल वापस लौट आये और चीख-पुकार मचाते हुए यह घोषणा की कि कल वाले भिखारी को उन्होंने एक काले पॉपलर के पेड़ के नीचे पड़े देखा है और उसने शायद अपना गला काट लिया है क्योंकि उसके पास ही एक लावारिस खँजर भी पड़ा हुआ था।

लेकिन सयाने कज्जाक जब देखने गये तो उन्होंने पाया कि ऐसा नहीं था। बूढ़ा अभी जिन्दा था। जब वे उसके पास गये तो उसने ज़मीन से उठने की कोशिश की, मगर उठ नहीं पाया। उसके बोलने की ताक़त चली गई थी लेकिन उसकी आँसू भरी आँखों में एक सवाल था और भीड़ में एक के बाद एक सभी चेहरों पर खोजने के बावजूद उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला।

शाम तक वह मर गया और यह सोचकर कि वह चर्च के पवित्र क़ब्रिस्तान में दफ़नाने के योग्य नहीं था, उसे वहीं काले पॉपलर के पेड़ के नीचे दफ़ना दिया गया जहाँ वह पड़ा हुआ मिला था। पहली बात तो यह थी कि वह एक अजनबी था, और दूसरे–एक चोर था, और तीसरे, वह बिना पाप-क्षमा के ही मरा था। उसके पास ही

कीचड़ में उन्हें खँजर पड़ा मिला और स्कार्फ भी।

कुछ ही दिनों बाद उन्हें ल्योंका भी मिल गया।

गाँव से थोड़ी ही दूरी पर स्तेपी के लम्बे नालों में से एक के ऊपर कौव्वो के झुण्ड जुटने लगे थे और जब वे देखने के लिए नज़दीक गये तो उन्होंने उस गीले कीचड़ में बाँहें फैलायें मुँह के बल पड़े हुए एक छोटे से लड़के को पाया, जिसे तूफान नाले की तलहटी में छोड़ गया था।

पहले उन्होंने उसे चर्च के क़ब्रिस्तान में दफ़न करने का फैसला किया क्योंकि अभी वह बच्चा ही था, लेकिन थोड़ी देर सोचने-विचारने के बाद उन्होंने तय किया कि उसे भी उसके दादा के बगल में उसी काले पॉपलर के नीचे दफ़ना दिया जाये। वहाँ उन्होंने मिट्टी का एक टीला बना दिया और उसके ऊपर एक अनगढ़-सा पत्थर का क्रॉस खड़ा कर दिया।

(1893)

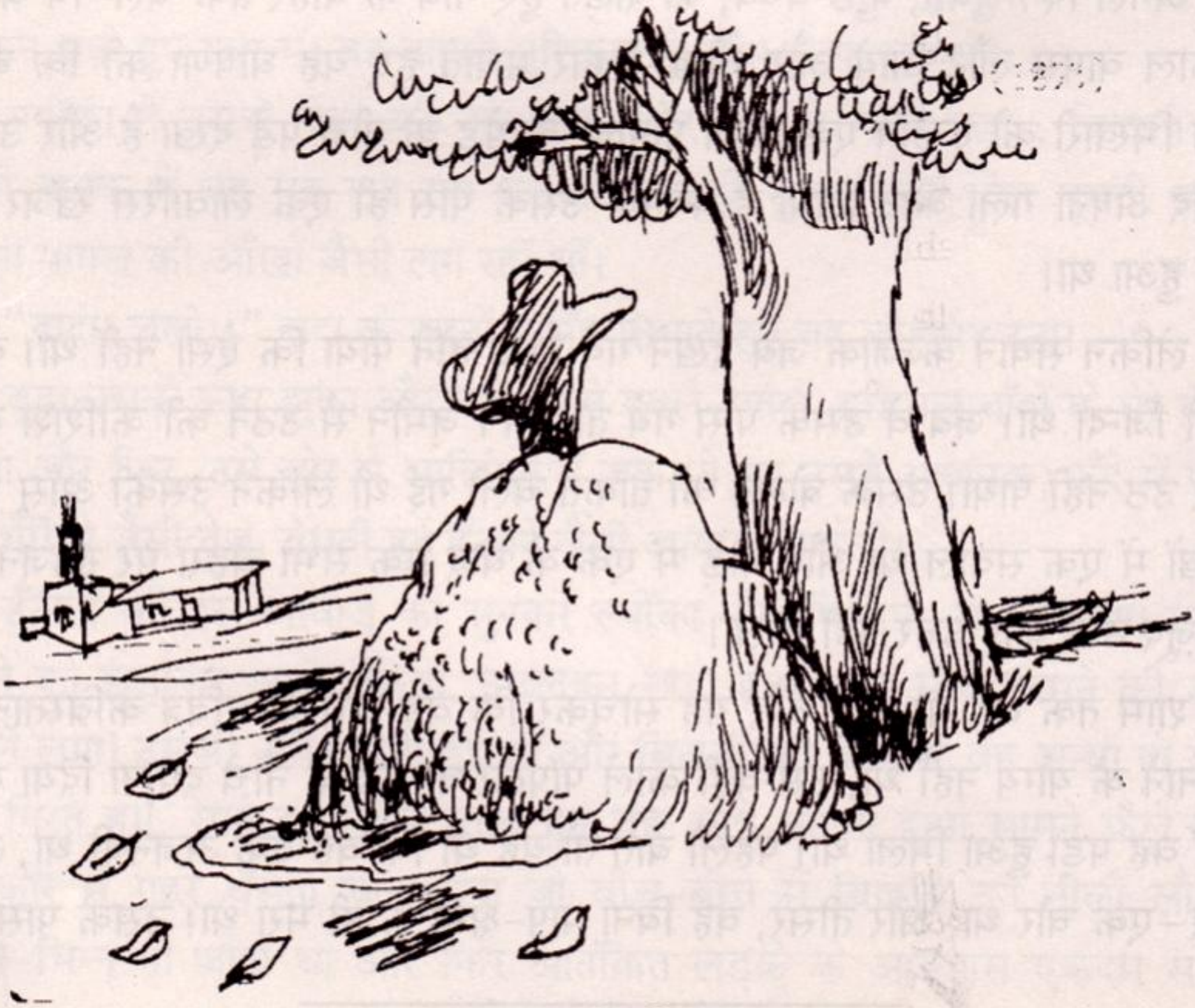

40 दादा आर्खिप और ल्योंका

अनुराग ट्रस्ट
लखनऊ